Dr. Vandana Suman
Associate Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara
B. A. Part - 1 (Hons)
Paper - I
Indian Philosophy

1

(रामानुज : ब्रह्म)

श्री रामानुजाचार्य का परमतत्व एक अद्वितीय ब्रह्म है जो सगुण ईश्वर कहलाता है। ईश्वर सृष्टिकर्ता है। सृष्टि करने में उसे चित और अचित दोनों तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। चित और अचित दोनों उपकरण हैं जिनके सहारे ही ईश्वर सृष्टि करता है। सृष्टिकर्ता होने से ईश्वर सगुण कहलाता है। चित और अचित को ईश्वर का विशेषण माना गया है अर्थात चित और अचित विशेषणों से ईश्वर विशिष्ट है। इसीलिए ईश्वर को चिद चिद् विशिष्ट कहा गया है। चित और अचित से विशिष्ट होकर भी ब्रह्म (ईश्वर) एक ही है। अतः रामानुज का मत विशिष्टाद्वैतवाद कहलाता है।

रामानुज के अनुसार ब्रह्म वह है जिससे सभी कुछ का उद्भव होता है, जिसके द्वारा सृष्टि संचालित होती है और जिसमें सृष्टि लय भी हो जाती है। ब्रह्म सत चित और आनन्द है। इस ब्रह्म से अलग कुछ नहीं है। ब्रह्म में सजातीय भेद नहीं है, सजातीय और विजातीय भेद नहीं है क्योंकि ब्रह्म ही सत्ता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। फिर भी ब्रह्म में ही भेद है — आन्तरिक भेद है, स्वगत भेद है।

यह भेद अचित और चित का है। के अभिन्न अंग है। ईश्वर का शरीर और ईश्वर की इनकी आत्मा कहा गया है। जिसप्रकार एक व्यक्ति में केवल शरीर का परिवर्तन होता है आत्मा परिवर्तित नहीं होती इसीप्रकार ईश्वर का परिवर्तन नहीं होता। उसके शरीर चित और अचित का परिवर्तन होता है। ईश्वर सभी परिवर्तनों का संचालक है। चित और अचित भागों के द्वारा भौतिक पदार्थों और जीवों की सृष्टि होती है। जिसप्रकार मकड़ा अपने से ही सामग्री निकालकर अपना जाल बुन लेता है उसीप्रकार ईश्वर स्वयं ही सृष्टि कर लेता है। ईश्वर सृष्टि का उपादान और निमित्त दोनों कारण है।

रामानुज के अनुसार ब्रह्म की दो अवस्थाएँ हैं — कारणावस्था और कार्यावस्था।

1. कारणावस्था — कारण-अवस्था सूक्ष्म और अविकृत अवस्था है। इस अवस्था में चित और अचित नाम और रूप से विहीन होकर शुद्ध अविकृत अवस्था में निवास करते हैं। यह प्रलय की अवस्था है। प्रलय होने पर स्थूल-भूत और स्थूल शरीर लुप्त हो जाते हैं, केवल सूक्ष्म भूत रह

जाता है; जीव और अचेतन अपनी अवस्था में आ जाते हैं। वह ईश्वर की कारणावस्था है। कार्यावस्था - यह ईश्वर की अवस्था है। इसमें चेतन और अचेतन शरीरधारी हो संसार में प्रकट होते हैं। सृष्टि के समय सूक्ष्म पदार्थ स्थूल बन जाते हैं और भौतिक जगत का निर्माण होता है, जीव शरीरधारी हो जाते हैं और चेतनों की सृष्टि होती है। अपने - अपने कर्मों के अनुरूप जीव शरीर पा लेते हैं। यह ईश्वर की कार्यावस्था है।

इसप्रकार जीव और जड़ - जगत की पहली अवस्था सूक्ष्म और कारण की अवस्था है। यही ब्रह्म की अव्यक्त प्रकृति है और जब चेतन प्रकृति व्यक्त होती है तो जीव और जड़ शरीरधारी बन जाते हैं। इसप्रकार नानारूपात्मक जगत की सृष्टि प्रारम्भ होती है। जब जीव और जड़ शरीरधारी हो जाते हैं तो ब्रह्म भी स्रष्टा (ईश्वर) बन जाता है। अतः ब्रह्म एक ही है। अपनी अव्यक्त अवस्था में वह कारण ब्रह्म है और व्यक्त अवस्था में कार्य ब्रह्म। कार्य ब्रह्म स्थूल और शरीरधारी रूप है। इसमें ईश्वर, जीव और जड़ तीनों तत्व अनेक व अलग दिखलायी पड़ते हैं। तीनों तत्वों का कार्य

क्रम भी अलग - अलग हो जाता है। जीव अपने पूर्व कर्मो के अनुसार शरीर धारण करके नाना - प्रकार के भोगों का भोक्ता है तथा ईश्वर दाता कहलाता है। जीव और जड़ नियम्य हैं, ईश्वर नियन्ता है। क्रम सृष्टि और प्रलय से ईश्वर स्वयं प्रभावित नहीं होता, अपरिवर्तित रहकर इन क्रियाओं का संचालन करता है जिसके कारण ईश्वर को 'अन्तर्यामी' भी कहा गया है।

रामानुजाचार्य ईश्वर के आठ गुण मानते हैं। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, सत्य संकल्प और निष्पाप। इसे ही गुणात्मक कहा जाता है। यह गुणात्मक ईश्वर के स्वरूप का परिचायक है। इन गुणों के अतिरिक्त वह सृष्टि का कर्ता और स्वामी भी है। श्रुतियों में भी सृष्टि का अन्तर्यामी सूत्राधार कहा गया है। वह सृष्टि को उत्पन्न करता है, पालन करता है और संहार करता है। उसे सबका स्वामी और कर्माध्यक्ष माना गया है। जीवकृत पाप और पुण्य के लिए फल का विधान वही करता है। वह कर्तुं अकर्तुं तथा अन्यथाकर्तुं समर्थ है। अतः इसे सर्वशक्ति सम्पन्न कहा गया है। इन सबके अतिरिक्त ईश्वर दया का धाम करुणासागर है। वह जगत को पुत्र के समान प्यार

करता है। दीन दासियों की सहायता करता है, भक्तों पर अनुग्रह करता है। अतः वह भक्त वत्सल कहलाता है। शरणागत भक्तों की रक्षा के लिए वह कृत संकल्प है। शरणागतों की रक्षा के लिए वह अवतार ग्रहण करता है।

रामानुजाचार्य ईश्वर का पाँच स्वरूप मानते हैं।

(क) पर - ब्रह्म वासुदेव यह काल और परिमाण के परे रूप है। ईश्वर के इस स्वरूप में ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य और तेज नामक षड्गुण सर्वदा विद्यमान रहते हैं। इसी वासुदेव रूप से ईश्वर वैकुण्ठ में निवास करते हैं।

(ख) व्यूह — यह संसार की लीला के लिए ईश्वर का स्वरूप है। संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध आदि रूप ईश्वर की लीला रूप है। ज्ञान और बल संकर्षण रूप में ऐश्वर्य और वीर्य प्रद्युम्न में, शक्ति और तेज अनिरुद्ध में प्रकट होता है। इनमें प्रद्युम्न से संहार होता है। अतः ईश्वर का यह रूप सृष्टि, पालन और संहार के लिए रूप है।

(ग) विभव - अवतार - यह भगवान का साक्षात धरती पर अवतार है। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए, साधुओं की रक्षा और दुष्टों का दमन करने के लिए अनन्त गुण धाम परमात्मा धरती पर आता है। मत्स्य, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण आदि रूपों में ईश्वर का अवतार होता है।

LIC

यह धरती पर भगवान का निवास है।
(घ) अन्तर्यामी - यह सभी प्राणियों के भीतर ईश्वर का निवास है। इसी रूप से भगवान मानव हृदय में गुहा अन्तःकरण में निवास करते हैं और स्वर्ग नरक आदि फलों को प्रदान करते हैं। अन्तर्यामी ईश्वर का नियन्ता रूप है। ईश्वर कर्माध्यक्ष है। वही मानव कृत कर्मों का निर्णय करता है।
(ङ) अर्चावतार - ईश्वर इस रूप में गुहा, विग्रह के रूप में, गृह ग्राम नगर आदि में निवास करता है। यह मूर्ति में भगवान का उपास्य - देव रूप है। भक्त इस रूप में उपासना करते हैं।
इस प्रकार रामानुज सगुण ब्रह्म (ईश्वर) को ही परम तत्व मानते हैं। ईश्वर ही कारण और कार्य दोनों है। प्रलयकाल में वह सूक्ष्म होकर कारण-ब्रह्म कहा जाता है और सृष्टि काल में चित् अचित् से सृष्टि कर वह स्थूल बन जाता है। कारण और कार्य, सूक्ष्म और स्थूल तो एक ही तत्व के दो रूप हैं। वस्तुतः ईश्वर एक, अद्वैत रूप है। सृष्टि कर वह सान्त नहीं हो जाता। सृष्टि और प्रलय उसकी इच्छा मात्र है। प्रलय कर वह प्राणियों को दण्ड देता है और पुनः अपनी इच्छानुसार सृष्टि को उत्पन्न करता है। वही सृष्टि की रक्षा करता है। अतः लोक-रक्षक है। लोक-रक्षा और भक्तों पर कृपा करने के लिए ही वह विभिन्न अवतार ग्रहण करता है। परन्तु मनुष्यादि रूप में अवतार ग्रहण कर भी वह मानव के

समान सान्त और अपूर्ण नहीं रहता। वह अव्यक्त रूप में भी अनन्त ज्ञान ऐश्वर्य और शक्ति से सम्पन्न रहता है। अतः सगुण ब्रह्म या ईश्वर ही रामानुज का परम तत्व है। इसी परमतत्व को हम पर ब्रह्म, भगवान वासुदेव कहते हैं। वासुदेव सर्वज्ञ, सर्वशक्ति सम्पन्न और भक्तवत्सल हैं। वे अनन्त गुणों के भण्डार, जगत् के उपादान एवं जीव के नियामक हैं। नारायण या वासुदेव सगुण होकर भी निर्गुण कहलाते हैं। इन्हें निर्गुण कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि वे मानवीय दुर्बलताओं के परे हैं। मानव में राग-द्वेष आदि हेय गुण निवास करते हैं। भगवान तो सभी सद्गुणों का भण्डार है। यह सगुण ब्रह्म या ईश्वर है और जगत का एकमात्र आधार है। जीव और जगत को धारण करते हुए भी वह इनसे भिन्न है। जीव और जगत से ईश्वर की भिन्नता को रामानुज 'स्वगत-भेद' मानते हैं। रामानुज के अनुसार भेद तीन प्रकार का है—

(क) विजातीय भेद— यह दो विभिन्न वर्गों का भेद है। जैसे— मनुष्य और पशु में विजातीय भेद है। मानव के बिलकुल विपरीत पशु है। अतः दोनों में विजातीय भेद है।

(ख) सजातीय— यह एक ही वर्ग के विभिन्न व्यक्तियों के रहने वाला भेद है। काले और गोरे व्यक्ति का भेद। काले और गोरे दोनों मानव जाति रूप वर्ग के अन्तर्गत हैं परन्तु दोनों में जो भेद है वह

सजातीय है।
(ग) स्वगत :— यह अपने शरीर के अंगों में रहने वाला भेद है। जैसे कि व्यक्ति के हाथ और पैर में भेद स्वगत भेद है।

रामानुज ब्रह्म में सजातीय और विजातीय भेद नहीं, परन्तु स्वगत भेद स्वीकार करते हैं। जीव और जड़ दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। ईश्वर शरीर के दो अंश हैं। परन्तु इन अंगों में भेद है। यही ब्रह्म का स्वगत भेद है। शंकराचार्य ब्रह्म को तीनों भेदों के परे निर्गुण मानते हैं। रामानुजाचार्य चित और अचित तत्व की भिन्नता के कारण ईश्वर में (स्वगत-भेद) स्वीकार करते हैं।

रामानुज के अनुसार चित - तत्व जीवात्मा है। जीव या आत्मा शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण से भिन्न है। जीव ब्रह्म का ही रूप है, जीव को सृष्टि का अंश है ब्रह्म के चित रूप का व्यक्त हो जाना। सृष्टि के पहले जीव निष्क्रिय रूप में है सृष्टि में उसकी क्रियाशीलता जागती है। आत्मा स्वतः प्रकाशमान - चेतन कर्ता है। ईश्वर पर यह निर्भर अवश्य है फिर भी एक प्रकार से इसका स्वरूप ईश्वर-जैसा ही है।

रामानुज के अनुसार चैतन्य और आत्मा में गुण - गुणी धर्म - धर्मी सम्बन्ध है। चैतन्य या ज्ञान आत्मा का गुण है, धर्म है, आत्मा ही ज्ञान का आश्रय है। रामानुज के अनुसार ज्ञान ही आत्मा का स्वभाव या स्वरूप है। तात्पर्य यह है कि आत्मा

LIC

स्वभाव तो ही ज्ञान रूप है। अतः आत्मा ज्ञाता है, कर्ता और भोक्ता नहीं है। शरीर में निवास करने से अथवा शरीर से सम्बन्ध होने के कारण आत्मा कर्म करता है। तथा उसके फल को प्राप्त करता है। अतः यह कर्ता और भोक्ता है। परन्तु ज्ञाता होना आत्मा का निजी स्वभाव है। कर्ता और भोक्ता होना नहीं। इसमें कर्तापन भोक्तापन तो शरीर के कारण है। अतः यह जीवात्मा का सांसारिक धर्म है। जब ईश्वर की कृपा से जीवात्मा का शरीर और संसार से सम्बन्ध छूट जाता है, आत्मा अपने ज्ञान स्वरूप में ही स्थित रहता है। अतः ज्ञातत्व जीवात्मा का स्वभाविक धर्म है परन्तु कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं। इस प्रकार आत्मा के सांसारिक और असांसारिक धर्म में भेद है।

रामानुजाचार्य के अनुसार जीवात्मा 'अहं' या मैं शब्द से वाच्य है। "मैं या अहं" शब्द ही सभी प्रकार के ज्ञान का आधार या आश्रय है। यह मैं चैतन्य रूप है यह सभी प्रकार की अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। जैसे मैं जागता हूँ, मैं सोता हूँ, मैं सुख-लाभ करता हूँ, आदि विभिन्न अवस्थाओं में 'मैं' का प्रयोग सबमें है इससे सिद्ध होता है कि अहं या मैं चेतन क्रियाओं का अधिष्ठान या आश्रय है। यही जीवात्मा का वास्तविक है। यह जीवात्मा शरीर इन्द्रिय मन, प्राण और बुद्धि आदि से भिन्न तत्व है। शरीर इन्द्रिया, मन आदि जीवात्मा के साधन है जिनके सहारे जीवात्मा अपना लक्ष्य सिद्ध करता है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा अति चेतन भी है। परन्तु उसका कर्त्तापन और भोक्तापन इन्द्रियों के माध्यम से ही संपादित होता है। जीवात्मा की सत्ता भिन्न है, परन्तु वे आत्मा के सत्यापक हैं। शरीर, इन्द्रियों आदि सभी अवस्थाओं से अतिरिक्त आत्मा नित्य है। इनके आनन्द मग्न जीवात्मा स्वतंत्र भी है। परन्तु जीवात्मा को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं। कर्म करने में जीव स्वतंत्र है परन्तु कर्मफल को भोगता है। अतः फल भोगने में जीव स्वतंत्र नहीं। जीव के कर्मों का नियामक ईश्वर ही है। अतः कर्म करने में जीव स्वतंत्र है, परन्तु कर्म का मूल्यांकन ईश्वर के अधीन है।

रामानुज के अनुसार जीव अणु-परिमाण है। इस अणु-परिमाण के कारण जीवात्मा सभी भौतिक शरीरों में प्रवेश करता है। शरीर अनेक हैं अतः आत्मा भी अनेक हैं। जीवात्मा मुख्य तीन प्रकार के होते हैं

(क) बद्ध जीव — ये सांसारिक जीव हैं जो सभी प्रकार के शरीरों में निवास करते हैं। इनकी सांसारिक यात्रा चलती रहती है तथा ये चौदहों भुवनों में घूमते रहते हैं।

(ख) मुक्त जीव — भगवान की पूजा और प्रार्थना से जीव की सांसारिक यात्रा समाप्त हो जाती है और स्थूल और सूक्ष्म शरीर का विनाश हो जाता है। इसके पश्चात जीव दिव्य-देह धारण कर वैकुण्ठ में भगवान के समीप निवास

करता है। क्रमशः यह जीव या ईश्वर प्राप्त करता है। स्वरूप से जीव ईश्वर के साथ रहता है।

संसार में नहीं आते (हों) नित्य जीव - वे कभी संसार में नहीं आते तथा इनका ज्ञान कभी लुप्त नहीं होता। इन्हें भगवान् का पार्षद कहा जाता है। विष्वक्सेन आदि इसी प्रकार के नित्य जीव हैं। भगवान के समान स्वेच्छा से इनका अवतार भी माना जाता है।

आत्मा और ईश्वर का सम्बन्ध एक विशिष्ट प्रकार का है और जीव अभिन्न नहीं है भिन्न भी है। इसी स्थल पर रामानुज 'भेदाभेद' के भाव की बात करते हैं। रामानुज ने 'भेद' और 'अभेद' दोनों की कड़ी आलोचना की है, किन्तु अपने 'भेदाभेद' के भाव को समझाने की चेष्टा में इतनी विरोधी बातें कही हैं कि समझना कठिन हो जाता है। रामानुज ने उपमाओं से सहायता ली है, जो कठिनाई और बढ़ा देती है। जीव को कभी ईश्वर का अंश कहा गया है कभी 'शरीर' कहा गया है कभी ईश्वर का प्रतिरूप या प्रकार कहा गया है। फिर भी जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को उन्होंने अपने ढंग से समझा है। यदि दो तत्व पूर्णतया भिन्न हैं तो उनका एकीकरण नहीं हो सकता और यदि वे एक ही हैं तो इन्हें दो कहकर फिर एकीकरण निरर्थक है। इसलिए ईश्वर और जीव

LIC

न पूर्णतया एक है, न पूर्णतया भिन्न। है परन्तु विशेष प्रकार का। रामानुज, अद्वैत तो मानते हैं परन्तु शंकर से भिन्न है। इसी अर्थ में रामानुज का अभेद है। रामानुज का। शंकर का अद्वैत अभेद है। शंकर के अद्वैत की अर्थ में भेद सहित और जीव दोनों के चैतन्य की एकता है। साधारण प्रकार से जीव अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वज्ञ है। जीव सान्त है और ब्रह्म अनन्त है। परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से दोनों शुद्ध चैतन्य है अतः दोनों एक है। इन दोनों का अधिकरण (चैतन्य) एक होने से दोनों में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध माना गया है। इस प्रकार (तत्वमसि महावाक्य जीव और ब्रह्म की अभिन्नता या एकता का प्रतिपादक है तत त्वम असि (वाक्य में तत का अर्थ है ईश्वर त्वम का अर्थ है शरीर धारी जीव है शरीर धारी जीव भी ईश्वर का ही रूप है, इसकारण यह वाक्य ईश्वर के दो रूपों में तादात्म्य दिखलाता है। इसका अर्थ है कि शरीर धारी जीव भी ईश्वर का ही रूप है। इसकारण रामानुज के सिद्धान्त को (विशिष्टाद्वैत) कहते हैं।

रामानुज के अनुसार मनुष्य को एक भौतिक शरीर है और आत्मा भी। शरीर ईश्वर के अचित रूप का बना है। आत्मा ईश्वर के चित रूप की अभिव्यक्ति है, यह निर्मित नहीं होती व्यक्त होती है। आत्मा के अनेक लक्षण बताये गये हैं। आत्मा को ज्ञाता कर्ता और भोक्ता कहा गया है। यह चिन्तन

कोई स्वतः प्रकाशमान है। चेतना का आश्रय ज्ञान है। चेतना शरीर पर निर्भर नहीं करती। यह आत्मा का आन्तरिक गुण है, कभी आत्मा चेतना से रहित नहीं होते। यह नित्य है और विभुरूप है। यह प्रकृति से भिन्न है फिर भी ईश्वर पर निर्भर है। ईश्वर नियन्ता है और आत्मा उसमें नियमित। रामानुज के अनुसार आत्मा चेतन है, अहम है। आत्मा को धर्मस्वरूप भी कहा गया है।

संसार में आत्मा कर्मों से बंध जाती है, मोक्ष में वह इनसे मुक्त होकर अपनी अवस्था में आ जाती है। प्रलय की अवस्था में यह सूक्ष्म रूप में कर्मों के प्रभाव में ही रहती है क्योंकि इसे फिर अपने कर्मों के फल भोगने के लिए दूसरे जन्म के फेर में जाना है। यह ठीक है कि बन्धन और पुनर्जन्म के फेर में आत्मा आती है, किन्तु आत्मा का वास्तविक रूप शुद्ध है। सांसारिक दुःख और अपूर्णताएँ आदि वह भोगती है किन्तु इनका चित्स्वरूप इनसे ग्रस्त नहीं होता।

रामानुजाचार्य के अनुसार जीव और ईश्वर का स्वरूप तो चेतन ही है। दोनों का लक्षण 'चैतन्य' है। परन्तु दोनों की चेतना या ज्ञान एक समान नहीं। जीव अल्पज्ञ है और ईश्वर सर्वज्ञ। अतः दोनों का स्वरूप ज्ञान होते हुए भी अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का भेद अवश्य है। जीव का ज्ञान कभी ईश्वर के समान नहीं। जीव में अज्ञान है। माया के कारण वह सीमित है। अज्ञान से आवृत

दोनों से गाढ़ आलोक है। ईश्वर में अज्ञान की गुंजाइश नहीं रहती। अतः ईश्वर सर्वज्ञ है इस प्रकार दोनों का स्वरूप ज्ञान होते हुए भी दोनों के ज्ञान में भेद आवश्यक है। परन्तु जहाँ तक ज्ञान स्वरूप का प्रश्न है दोनों एक है। ज्ञान या चेतन्य जीवात्मा और परमात्मा का समान लक्षण है। परन्तु जीवात्मा और परमात्मा के गुण असमान या विशेषगुण भी है।

नियामय और प्रकारी भी है। शेष आत्मेय, जीवात्मा अणु है। जीवात्मा परमात्मा का शरीर है, परमात्मा शरीरी है आत्मा सूक्ष्म का प्रकार है, परमात्मा प्रकारी है। अतः दोनों में भेद है। इस प्रकार रामानुज के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध भेद सहित अभेद है। इनके अनुसार 'तत्वमसि', 'अहंब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों का अर्थ नितान्त अभेद नहीं है। शंकराचार्य अभेद अर्थ व लक्षणा द्वारा बतलाते है। यह वही देवता है (सोऽयं देवदत्तः) में इस तत्कालीन और एतत्कालीन दोनों को भूलकर केवल शुद्ध देवदत्त का अभेद अर्थ ग्रहण करते है। रामानुज लक्षणा के द्वारा अर्थ नहीं मानते। लक्षणा में एक ही विरुद्ध भावात्मक होती है। परन्तु यह वही देवदत्त है इस वाक्य में 'स' और 'अयं' दोनों में लक्षणा मानी जा रही है। रामानुज काल भेद से कुछ भेद स्वीकार भेद करते है। अतः वे लक्षणा के द्वारा अभेद अर्थ नहीं मानते। उनके अनुसार यह भेद सहित अभेद है।

जीव तथा ब्रह्म इस प्रकार रामानुज के अनुसार में भेद सहित अभेद है।